कविता-मंजरी

(एडमिशन परीक्षा के लिये)

संकलनकर्त्ता

जगन्नाथप्रसाद शर्मा एम० ए०, डी० लिट्०

अध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

प्रकाशक

वाणी-मंदिर, बनारस

मूल्य १॥)

निवेदन

इस कविता के संग्रह में हिन्दी के प्राचीन और नवीन युगों के श्रेष्ठ कवियों की अच्छी से अच्छी रचनाएँ संकलित की गई हैं। जो अंश लिए गए हैं वे उत्तर प्रदेश के हाईस्कूल और हिन्दू विश्वविद्यालय की एड्मिशन परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए सर्वथा उचित हैं। योग्यता के निर्णय में हिन्दूस्कूल के वयोवृद्ध और अनुभवी हिन्दी अध्यापक पं० श्रीकृष्ण शुक्ल ने बड़ी सहायता की है। उक्त परीक्षाओं की आवश्यकता का विचार करके ही अंत में शब्दार्थों (चूर्णिका) की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक कवि की रचना के पूर्व एक साधारण परिचयात्मक विवरण भी दिया गया है जिसमें कवि के अति संक्षिप्त जीवनवृत्त के साथ-साथ उनकी प्रमुख विशेषता की ओर विद्यार्थी का ध्यान आकर्षित कर दिया गया है। अध्यापकों को चाहिए कि अपने विद्यार्थियों को कुछ चुनी हुई कविताएँ कंठाग्र कराएँ और समय-समय पर कक्षा अथवा अन्य किसी समुदाय में उनसे पढ़वाएँ। इससे कवियों की अमर वाणी स्मृति में बनाए रखने और उसे सरस ढंग से सुना सकने की शक्ति विद्यार्थियों में बढ़ेगी और उनकी सामान्य कविता-संबंधी अभिरुचि का निरन्तर परिष्कार होता जाएगा।

अपने सभी सहयोगी अध्यापकों से निवेदन है कि वे यदि कहीं कोई कठिनाई का अनुभव करें तो इन पंक्तियों के लेखक को अवश्य सूचित करें अथवा यदि यह समझें कि कोई अंश अपेक्षित योग्यता से अधिक सरल या कठिन है तो उसकी भी सूचना दें। आजकल की पढ़ाई-लिखाई में योग्यता का क्रम स्थापित होना नितांत वांछनीय है और इस कार्य में अनुभवी अध्यापकों का मंतव्य अवश्य जानना चाहिए।

औरंगाबाद,
काशी।
शिवरात्रि, सं० २००८

जगन्नाथप्रसाद शर्मा

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

—

कबीरदास

कबीरदास के जन्म और मरण-काल तथा जन्म-स्थान के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। इन सबके लिए जनश्रुति का ही आधार लिया जाता है। इनका जन्म सं० १४५६ माना गया है और निर्वाण-काल सं० १५७५। ऐसी जनश्रुति है कि काशी से पश्चिमोत्तर लहरतारा ग्राम में नीरू नामके किसी जुलाहे ने एक तालाब के तट पर नवजात शिशु 'कबीर' को पाया। निस्सन्तान होने के कारण उसकी स्त्री 'नीमा' ने इसे पाला-पोसा। कबीर का बचपन साधुओं की संगति में बीता, जिससे उनका रहन हिन्दुओं का सा हो गया था। बचपन ही से उनके हृदय में संसार के प्रति वैराग्य और परमात्मा के प्रति अनुराग होने लगा था। कबीर ने स्वामी रामानन्द को अपना गुरु बनाया। आपने सूफी फकीरों का भी सत्संग किया था। पढ़े-लिखे न रहने पर भी आपबड़े प्रतिभावान् थे। वे अपने भावों को बड़ी आसानी से दोहों और पदों में व्यक्त कर देते थे और उनके अन्य शिष्य गण लिख लिया करते थे। कबीर के पदों का संग्रह 'बीजक' नामक ग्रन्थ में है। उनकी समस्त रचनाएँ साखी, सबद और रमैनी नाम से तीन भागों में विभक्त हैं।

कबीर का मत किसी जाति, देश वा सम्प्रदाय का पक्षपाती न था। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना—नाम स्मरण, ध्यान या योग (समाधि) रूप में—करने का आदेश दिया है। आप बड़े स्पष्ट वक्ता थे। धर्म के नाम पर होनेवाले वाह्याडम्बरों के आप कट्टर विरोधी थे। कबीर की मृत्यु के बाद उन्हीं के नाम पर एक सम्प्रदाय चला जो 'कबीर पंथ' के नाम से प्रसिद्ध है।

साहित्यिक कसौटी पर कबीर की कविता को नहीं कसना चाहिए क्योंकि वे कवि नहीं थे। कबीर के पद्यों की भाषा में पूरबी, अवधी, व्रज, राजस्थानी और खड़ी बोली सभी का सम्मिश्रण है। फिर भी इनकी रचना में सच्ची अनुभूति, निष्कपट भाव-प्रदर्शन और उत्तम दृष्टान्त मिलते हैं।

साखी

गुरु गोविंद दोनो खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविँद दियो बताय॥ १ ॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिट गया, दीपक देख्या माहिं॥ २ ॥
पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकै आखर पीउ का, पढ़ै सो पंडित होय॥ ३ ॥
पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं, पन छूटे है लाज॥ ४ ॥
माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
करका मन का डार दे, मनका मन का फेर॥ ५ ॥
गोधन गजधन बाजिधन, और रतनधन खान।
जो आवै संतोष धन, सब धन धूर समान॥ ६ ॥
ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होय॥ ७ ॥
कबीर यह जग कुछ नहीं, खिन खारा खिन मीठ।
काल्ह जो बैठा मंडपै, आज मसानै दीठ॥ ८ ॥
जाको जेता निरमया, ताको तेता होय।
रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटै कोय॥ ९ ॥
साहेब से सब होत है, बन्दे से कछु नाँहि।
राई सों पर्वत करै, पर्वत राई माँहि॥ १० ॥
जो कुछ किया से तुम किया मैं कछु कीया नाँहि।
कहो, कहीं जो मैं किया, तुम ही थे मुझ माँहि॥ ११ ॥
ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जागि॥ १२ ॥
आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बन्धन मोह॥ १३ ॥

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय॥ १४॥
साधु कहावन कठिन है, लाँबा पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर॥ १५॥
बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर॥ १६॥
संत न छोड़ै संतई, कोटिक मिलैं असंत।
मलय भुवंगहि बेधिया, सीतलता न तजंत॥ १७॥
कबिरा प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम-रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय॥ १८॥
नैनों की कर कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय॥ १९॥
दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करै न कोय।
जे सुख में सुमिरन करैं, दुख काहे को होय॥ २०॥
क्या मुख लै बिनती करौं, लज्जा आवत मोंहि।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावों तोंहि॥ २१॥
साहेब तुम न बिसारियो, लाख लोग लगि जाहिं।
हम से तुमरे बहुत हैं, तुमसे हमरे नाहिं॥ २२॥
सत्त नाम कडुआ लगै, मीठा लागै दाम।
दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम॥ २३॥
कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करै, विष से अमरित होय॥ २४॥
प्रभुता को सब कोउ भजे, प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय॥ २५॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटै, चारों दीरघ रोग॥ २६॥
छाया माया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगता के पीछे फिरै, सनमुख भागै सोय॥ २७॥

सील छिमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचे नहीं लाख कथे जो कोय ॥ २८ ॥
सब ते लघुताई भली, लघुता ते सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय ॥ २९ ॥
सपने में साईं मिले, सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता, मत सपना ह्वै जाय ॥ ३० ॥
रित बसन्त जाचक भया, हरखि दिया द्रुम पात।
ताते नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात ॥ ३१ ॥
जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यह सज्जन को काम ॥ ३२ ॥
खूंदन तो धरती सहै, काट कूट बनराइ।
सन्त सहैं दुरजन वचन, दूजै सहा न जाइ ॥ ३३ ॥
करगस सम दुरजन वचन, रहै सन्त जन टारि।
बिजुरी परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ॥ ३४ ॥
लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी शक्कर लै चली, हाथी के सिर धूरि ॥ ३५ ॥
करु बहियाँ बल आपनी, छांड़ि बिरानी आस।
जाके आंगन है नदी,. सो कस मरै पियास ॥ ३६ ॥
काची काया मन अथिर; थिर थिर काम करंत।
ज्यों-ज्यों नर निधरक फिरै त्यों-त्यों काल हसंत ॥ ३७ ॥
माली आवत देखि करि, कलियन करी पुकार।
फूले फूले चुन लिये, कालिह हमारी बार ॥ ३८ ॥
जब लगि नाता जगत का, तब लगि भक्ति न होय।
नाता तोड़े हरि भजै, भक्त कहावै सोय ॥ ३९ ॥
कामी, क्रोधी, लालची, इन ते भक्ति न होग।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥ ४० ॥
सातों सबद जु बाजते, घर घर होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े, बैसन लागे काग ॥ ४१ ॥

तन को जोगी सब करैं, मन को बिरला कोई ।
सब विधि सहजै पाइये, जो मन जोगी होई ॥ ४२ ॥
केला तबहिं न चेतिया, जब ढिंग लागी बेरि ।
अब के चेते क्या भयो, कांटनि लीन्हीं घेरि ॥ ४३ ॥
प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परगट होय ।
जो पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय ॥ ४४ ॥
सिख तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय ।
गुरु तो ऐसा चाहिए, सिख से कछु नहिं लेय ॥ ४५ ॥

——

मलिक मुहम्मद 'जायसी'

मलिक मुहम्मद के जन्म और मृत्युकाल का पता नहीं चलता। यह रायबरेली में 'जायस' नामक स्थान के रहनेवाले थे। यह हिन्दी की प्रेम-मार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि थे। आप सूफी फकीर मुहीमुद्दीन के शिष्य थे। आपने सं० १५६७ वि० में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' की रचना बादशाह शेरशाह के राजत्वकाल में की थी। 'पद्मावत' जायसी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह ठेठ अवधी भाषा का प्रबन्धकाव्य है। इनकी दूसरी रचना 'अखरावट' है, जिसमें वेदान्त विषयक विवेचन है।

जायसी ने मुसलमान होते हुए अपनी रचना में हिन्दू देवताओं के प्रति श्रद्धा प्रकट की है। इनके हृदय में हिन्दुओं के प्रति पवित्र और कोमल भावनाएँ थीं। हिन्दी के कवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है।

गोरा की वीरता

सोरह सै चंडोल सँवारे। कुँवर सँजोइल कै बैठारे॥
पदमावति कर सजा बिवानू। बैठ लोहार न जानै भानू॥
रचि बिवान सो साजि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहिं सब ढारा॥
साजि सबै चंडोल चलाए। सुरँग ओहार मोति बहु लाए॥
भए सँग गोरा बादल बली। कहत चले पदमावति चली॥
हीरा रतन पदारथ झूलहिं। देखि बिवान देवता भूलहिं॥

राजहिं चलीं छोड़ावै, तहँ रानी होइ ओल।
तीस सहस तुरि खिंची सँग, सोरह सै चंडोल॥ १ ॥

चलि बिवान राजा पहँ आवा। सँग चंडोल जगत सब छावा॥
पदमावति के भेस लोहारू। निकसि, काटि बँदि कीन्ह जोहारू॥
उठा कोपि जस छूटा राजा। चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा॥

गोरा बादल खाँड़े काढ़े। निकिसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े॥
लेइ राजा चितउर कहँ चले। छूटे३ सिंघ मिरिग खलभले॥
चढ़ा साहि चढ़ि लागि गोहारी। कटक असूझ परी जग कारी॥
फिरि गोरा बादल सौं कहा। 'गहन छूटि पुनि चाहै गहा॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू। अब इहै गोइ इहै मैदानू॥
तुइ अब राजइ लै चलु, गोरा। हौं अब उलटि जुरौं, भा जोरा॥
आजु खड़ग चौगान गहि, करौं सीस रिपु गोइ।
खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत महँ होइ'॥ २॥
तब अगमन होइ गोरा मिला। तुइ राजइ लेइ चलु बादला॥
पिता मरै जो सँकरे साथा। मीचु न देइ पूत के माथा॥
मैं अब आउ भरी औ भूँजी। का पतिछाव आउ जौ पूजी॥
बहुतन्ह मारि मरौ जौ जूझी। तुम जनि रोएहु तौ मन बूझी॥
कुँवर सहस सँग गोरा लीन्हें। और वीर बादल सँग कीन्हें॥
गोरहि ममदि मेघ अस गाजा। चला लिए आगे करि राजा॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा। पूरुष देखि चाव मन बाढ़ा॥
आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ।
परति आव जग कारी, होति आव दिन साँझ॥ ३॥
फिरि आगे गोरा तब हाँका। खेलौं, करौं आजु रन साका॥
हौं कहिए धौला गिरि गोरा। टरौं न टारे, अंग न मोरा॥
ओनई घटा चहूँ दिसि आई। छूटहिं बान मेघ-झरि लाई॥
डोलै नाहिं देव जस आदी। पहुँचे आइ तुरुक सब बादी।
हाथन्ह गहे खड़ग हरद्वानी। चमकहिं सेल बीजु कै पानी॥
सोझ बान जस आवहिं गाजा। बासुकि डरै सीस जनु बाजा॥
गोरै साथ लीन्ह सब साथी। जस मैमन्त सूँड़ बिनु हाथी॥
रुण्ड मुंड अब टूटहिं, स्यों बखतर औ कूँड़।
तुरय होहिं बिनु काँधे, हस्ति होहिं बिनु सूँड़॥ ४॥
भइ बगमेल सेल घनघोरा। औ गज-पेल, अकेल सो गोरा॥
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा। भार पहार जूझ कर काँधा॥

लगे मरै गोरा कै आगे। बाग न मोर घाव मुख लागे॥
जैसे पतङ्ग आगि धँसि लेई। एक मुवै दूसर जिउ देई॥
टूटहिं सीस, अधर धर मारै। लोटहिं कंधहि कंध निरारै॥
कोई परहिं रुहिर होइ राते। कोई घायल घूमहिं माते॥
कोइ खुरखेह गए भरि भोगी। भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी॥
घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुँवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल॥ ५॥
गोरै देखि साथि सब जूझा। आपन काल नियर भा, बूझा॥
कोपि सिंघ सामुहिं रन मेला। लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन बिदारै घटा॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यों घोड़े टूटै असवारू॥
लोटहिं सीस कबंध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आग जनु लावा॥
हस्ती-घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका॥
भइ अज्ञा सुलतानी, 'बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे, लिए पदारथ साथ'॥ ६॥
सबै कटक मिलि गोरहि छेका। गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका॥
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा॥
तुरुक बोलावै बोलै बाहाँ। गोरै मीचु धरी जिव माहाँ।
जिनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ के मोंछ हाथ को मेला?॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा। मुए पाछ कोई घिसियावा॥
करै सिंघ मुख सौंहहिं दीठी। जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी॥
रतन सेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुहिर न धोवौं, तौ लगि होइ न रात॥ ७॥
सरजा वीर सिंघ चढ़ि गाजा। आइ सौंह गोरा सौं बाजा॥
पहुँचा आइ सिंघ असवारू। जहाँ सिंघ गोरा बरिआरू॥
मारेसि साँग पेट महँ धँसी। काढ़ेसि हुमकि आँत भुँइ खसी॥
कहेसि अंत अब भा भुंइ परना। अंत त खसे खेह सिर भरना॥

कहि कै गरजि सिंघ अस धावा। सरजा सारदूल पहँ आवा॥
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ। परा खड्ग जनु परा निहाऊ।
बज्र क साँग बज्र कै डाँड़ा। उठी आगि तस बाजा खाँड़ा॥

तस मारा हठि गोरै, उठी बज्र कै आगि।
कोइ नियरै नहिँ आवै, सिंघ सदूरहि लागि॥ ८॥

तब सरजा कोपा बरिबंडा। जनहु सदूर केर भुजदंडा॥
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा। जानहु परी टूट सिर गाजा॥
ठाँठर टूट फूट सिर तासू। स्यों सुमेरु जनु गिरा अकासू॥
धमकि उठा सब सरग पतारू। फिरि गई दीठि फिरा संसारू॥
भइ परलय अस सबही जाना। काढ़ा खड्ग सरग नियराना॥
तस मारेसि स्यों घोड़ै काटा। धरती फाटि सेस फन फाटा॥

गोरा परा खेत महँ, सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान॥ ९॥

——

सूरदास

मथुरा और आगरे के बीच रुनकता नामक ग्राम में सूरदास जी का जन्म लगभग संवत् १५४० के हुआ। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रामदास था। ये जन्मान्ध थे वा जन्मकाल के बाद में अन्धे हुए, इस पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग तो इन्हें चन्दबरदाई का वंशज मानते हैं। ये ब्रज में अपना आश्रम बनाकर रहते थे। एक बार महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य-जी वहाँ पधारे और सूर को अपना शिष्य बना लिया। महाप्रभुजी के उपदेश से उनमें कृष्ण-भक्ति का उदय हुआ। इनकी सुप्त प्रतिभा जाग्रत हो उठी। श्रीमद्भागवत के कथा-प्रसंगों के आधार पर उन्होंने तत्कालीन ब्रजभाषा में गीति-काव्य की रचना की, जो सूरसागर के नाम से प्रसिद्ध है। भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास के बाद सूरदास ही का स्थान है। सूर की सारी रचना शृङ्गार और वात्सल्य से पूर्ण है। महाप्रभु के पुत्र गोस्वामी बिट्ठलनाथजी ने अष्टछाप नाम से आठ शिष्यों की एक मण्डली स्थापित की थी। जिसमें सूरदास का नाम सर्वप्रथम है। अष्टछाप के महात्माओं के नाम ये हैं—सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविंददास, चतुर्भुजदास, और नन्ददास। ये सभी श्रेष्ठ कवि हो गए हैं। सूरदास के पद बड़ी भक्ति और प्रेम से गाए जाते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों ने कृष्णचन्द्र की प्रेमलीला का ही गुणानुवाद किया है और उनकी शृङ्गारात्मक मूर्ति की ही उपासना चलाई। उन्होंने कृष्ण के लोक-रक्षक और धर्म-संस्थापक रूप को लोक के सामने रखने की आवश्यकता नहीं समझी। फलतः सभी कृष्णोपासकों ने श्रीमद्भागवत के आधार पर ब्रजलीला का ही वर्णन किया है। इनकी रचना तत्कालीन ब्रजभाषा में हुई है।

(१) विनय

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सबके अंतर जामी!
जो तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमक हरामी॥
भरि भरि उदर विषय कौं धावौं, जैसे सूकर ग्रामी।
सुनि सतसंग होत जिय-आलस विषयनि सँग बिसरामी॥
हरि-जन छाँड़ि हरी-विमुखन की निसिदिन करत गुलामी॥
पापी परम अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी।
'सूर' पतित कौं ठौर कहाँ है सुनिये श्रीपति स्वामी॥ १॥

मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै?
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै।
कमलनैन को छांड़ि महातम, और देव को ध्यावै?
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुमति कूप खनावै?
जिन मधुकर अम्बुज रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै?
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥ २॥

छाँड़ि मन हरि बिमुखन को संग!
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग॥
कहा होत पय-पान कराये, बिष नहिं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगायो, स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरहि खहि छंग॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतो करत निखंग।
'सूरदास' खल काली कामरि, चढ़त न दूजो रंग॥ ३॥

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगेहि मीठे फल की रस अन्तरगत ही भावै॥
परम स्वाद सब ही जु निरंतर अमित तोष उपजावै॥
मन बानी को अगम अगोचर सो जानै जो पावै॥
रूप-रेख-गुनजाति-जुगुति-बिनु निरालम्ब मन धावै॥
सब विधि अगम बिचारहिं ताते 'सूर' सगुन लीलापद गावै॥ ४॥